**वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष ६, शुक्रवार**

**दि.११-२-१९६६, गाथा १, २, प्रवचन नं.-२३**

## चौथी ढाल

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। चौथी ढाल चलती है। '**सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अंतर।**' पहले क्या कहा ? प्रथम में प्रथम तो सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान होता नहीं और सम्यग्ज्ञान बिना व्रत, तप, चारत्रि सच्चा होता ही नहीं, झूठा होता है।

मुमुक्षु :- झूठा तो झूठा है तो सही न ?

उत्तर :- झूठा है। झूठे में आत्मा को क्या लाभ है ? वह तो कहा सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र मिथ्या है, वह तो पहले कहा। वह श्लोक आ गया न ? कहाँ आया था ? अंतिम आया न ?

**मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;**

**सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।**

यह सादी हिन्दी भाषा में है। 'दौलतरामजी' बडे पंडित हो गये हैं। कहते हैं कि, जिसे मोक्ष चाहिए, उसकी बात है। जिसे संसार चाहिए, पुण्य-पाप का बंध और पुण्य-पाप का फल (चाहिए तो) वह बात तो हमारे पास नहीं है। वह बात तो अनादि काल से करते आये हैं। पुण्य-पाप करते हैं और पुण्य-पाप का फल चार गति में भोगते हैं। वह तो अनादि काल की बात है। वह कोई नवीन, अपूर्व बात नहीं। जिसे आत्मा की परमानंद अवस्था ऐसे मोक्ष की अभिलाषा है, ऐसे मोक्षमहल की प्रथम सीढी सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना सब ज्ञान, व्रत, तप, चारित्र आदि करे, वह सब मिथ्या हैं, सच्चा हीं है, उससे आत्मा का कोई कल्याण नहीं है।

कहा कि, '**या बिन ज्ञान चरित्रा; सम्यक्ता न लहैं।**' है न ? सम्यक् आत्मा का भान एक सैकेन्ड के असंख्य भाग में आत्मा निर्विकल्प आनंदकंद शुद्ध है। वह अपने से, कोई दूसरे से प्राप्ति होती नहीं। शास्त्र से प्राप्ति नहीं होती, गुरु से प्राप्ति नहीं होती, तीर्थंकर से प्राप्ति नहीं होती, ऐसी चीज़ है। अपना निज स्वरूप... वह तो पहले तीसरी ढाल में कहा न ? आत्मा पर का तो लक्ष्य छोड दे लेकिन अपने में जो पुण्य-पाप का भाव होता है, शुभ-अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध (के) शुभाशुभभाव की भी रुचि, लक्ष्य छोड दे और अपना आत्मा अनंत गुणस्वरूप और मैं गुणी और अनंतगुण मेरे में हैं - ऐसा भेद का विकल्प भी छोड दे। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! भाई ! यह अपूर्व बात है। अनंत काल में उसने किया नहीं। कभी सुनी नहीं और कभी किया नहीं, परिचय किया नहीं, आदर किया नहीं, अभ्यास किया नहीं, अनुभव तो किया (है ही) नहीं। ऐसा भगवान आत्मा अपना निज आत्मा। पहले कहा था न ? समझे ? दोपहर में 'परमात्मप्रकाश' में भी आया था। निज शुद्धात्मा। अनंत अनंत शांतरस से भरा आत्मा, उसको गुण और गुणी (अर्थात्) मैं आत्मा गुणी हूँ-गुण का धरनेवाला (हूँ) और ज्ञान, दर्शन, आनंद मेरे में गुण हैं - ऐसा भेद का विकल्प भी जहाँ काम नहीं करता। ऐसा भेद का विकल्प है, वह भी राग है तो दूसरे तो उसमें कहाँ काम आते हैं ? समझ में आया ?

कहते हैं कि, ऐसे आत्मा में प्रथम में प्रथम मोक्ष की पहली सीढी, अंतर्मुख आत्मा में सम्यग्द्शन प्रकट करके बाद में सम्यग्ज्ञान का आराधन करना। ऐसा यहाँ 'दौलतरामजी' 'छहढाला' में प्रथम सम्यग्दर्शन की बात, करके सम्यग्ज्ञान की बात करते हैं। यह तो सादी भाषा है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- आये न आये, उसका कुछ नहीं। २२ दिन (गुजराती में) चला अब थोडा यह भी चले न ? उन्होंने हिन्दी में कहा था, भाई ने तो पूरा हिन्दी में (लेने का) कहा था। अब थोडा चलने दो, कैसा चलता है, देखो तो सही। समझ में आता है ?

मुमुक्षु :– जब सूक्ष्म बात आयेगी तो बदलेंगे।

उत्तर :– वह कैसे मालूम पडे कैसा होगा ?

## सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

**सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ,**
**लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधौ।**
**सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई;**
**युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई।।२।।**

**अन्वयार्थ :- (सम्यक् साथै) सम्यग्दर्शन के साथ (ज्ञान) सम्यग्ज्ञान (होय) होता है (पै) तथापि (उन दोनोंको) (भिन्न भिन्न) (अराधौ) समझना चाहिए; क्योंकि (लक्षण) उन दोनों केलक्षण (क्रमशः) (श्रद्धा) श्रद्धा करना और (जान) जानना है तथा (सम्यक्) सम्यग्दर्शन (कारण) कारण है और (ज्ञान) सम्यग्ज्ञान (कारज) कार्य है। (सोई) यह भी (दुहूमें) दोनों में (भेद) अन्तर (अबाधौ) निर्बाध है। (जिस प्रकार) (युगपत्) एकसाथ (होते हू) होने पर भी (प्रकाश) उजाला (दीपकतैं) दीपक की ज्योति से (होई) होता है उसी प्रकार।**

**भावार्थ :- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यद्यपि एकसाथ प्रकट होते हैं तथापि वे दोनों भिन्न-भिन्न गुणों की पर्यायें हैं। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है और सम्यग्ज्ञान ज्ञानगुण की शुद्धपर्याय है। पुनश्चय, सम्यग्दर्शन का लक्षण विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थश्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण संशय* आदि दोष रहित स्व-पर का यथार्थतया निर्णय है - इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।**

**तथा सम्यग्दर्शन निमित्तकारण है और सम्यग्ज्ञान नैमित्तिक कार्य है - इस प्रकार उन**

* संशय, विमोह, (विभ्रम-विपर्यय) अनिर्धार।

**दोनों में कारण-कार्यभाव से भी अन्तर है।**

**प्रश्न :- ज्ञान-श्रद्धान तो युगपत् (एकसाथ) होते हैं, तो उनमें कारणकार्यपना क्यों कहते हो ?**

**उत्तर :- 'वह हो तो वह होता है' - इस अपेक्षा से कारण-कार्यपना कहा है। जिसप्रकार दीपक और प्रकाश दोनों युगपत् होते हैं तथापि दीपक हो तो प्रकाश होता है इसलिये दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। उसी प्रकार ज्ञान-श्रद्धान भी हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक (देहली) पृष्ठ १२६)**

**जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक का ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता - ऐसा होने से सम्यग्दर्शन वह सम्यग्ज्ञान का कारण है।X**

---

यहाँ तो कहते हैं कि, '**सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अंतर।**' पहले में पहले सम्यग्दर्शन। अपने स्वभाव में अनुभव में प्रतीत करनी वह पहली सीढ़ी, धर्मकी पहली रुचि, वह पहली शुरुआत होती है, वहाँ से धर्म की शुरूआत होती है। बाद में सम्यग्ज्ञान का अंतर आराधन करना, ऐसा 'अमृतचंद्राचार्य' भी 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय' में कहते हैं। नीचे श्लोक दिया है।

---

**X पृथगाराधनमिष्टं दर्शनसहभाविनोऽपि बौधस्य।**

**लक्षणभेदेन यतो, नानात्वं संभवत्यनयो:।।३२।।**

**सम्यग्ज्ञानं कार्य समकितं कारण वदन्ति जिना:।**

**ज्ञानाराधनमिष्टं समवकितानन्तरं तस्मात्।।३३।।**

**कारणकार्यवविधानं, समकालं जायमानयोरपि हि।**

**दीपप्रकाशयोररिव, समवकितज्ञानयो: सुघटम्।।३४।।**

**(श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव रचित पुरुषार्थसिद्धि उपाय)**

**सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ,**
**लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधौ।**
**सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई;**
**युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई।।२।।**

'**सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ;...**' है ? दूसरा श्लोक है। किसी में पहला लिखा है, किसी में दूसरा है। क्या कहते हैं ? देखो ! शब्दार्थ। '**सम्यग्दर्शन केसाथ सम्यग्ज्ञान होता है।**' ज्ञान आगे-पीछे होता नहीं। आत्मा, अपना शुद्ध परमानंदमूर्ति आत्मा, उसका अंतर भान, पहले सम्यक् हुआ उसके साथ ही उसकी सम्यग्ज्ञान की किरण साथ ही होती है, प्रकट होती है। समझ में आया ? उसके साथ चारित्र नहीं होता। स्वरूपाचरण होता है, लेकिन चारित्र जो संयम आदि है, वह आगे बढकर बहुत पुरुषार्थ करते है, बाद में बढ़ते हैं। पहले सम्यग्दर्शन के साथ तो सम्यग्ज्ञान तो होता ही है।

'**तथापि (उन दोनों को) भिन्न भिन्न समजना चाहिए;...**' देखो ! भगवान आत्मा, उसका ज्ञान करके प्रतीत (करनी), जहाँ सामान्य ज्ञान की बात चलती हो तो पहले ज्ञान आता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात चलती है तो पहले सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? अपने में सम्यग्दर्शन हुआ तो बाद में ज्ञान का आराधन करो क्योंकि '**उन दोनों के लक्षण...**' श्रद्धा करना और जानना-ये दो लक्षण भिन्न हैं। अपना निज स्वरूप (उसकी) शुद्ध श्रद्धा-प्रतीत करनी, वह श्रद्धा लक्षणवाला सम्यग्दर्शन है। ज्ञान करना वह जानपना लक्षणवाला है। दोनों के लक्षण भिन्न हैं। समझ में आया ? क्योंकि दो गुण की दो पर्याय हैं। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की पर्याय है और सम्यग्ज्ञान ज्ञानगुण की निर्मल पर्याय हैं, दो पर्याय भिन्न हैं। दो गुण भिन्न हैं तो दो पर्याय भिन्न हैं। '**उन दोनों का लक्षण श्रद्धा करना और जानना है...**' जानना किसका ? निज स्वरूप का। उसमें विशेष ज्ञान का अभ्यास चलेगा।

'**तथा सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है।**' जब सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो सम्यग्दर्शन कारण है और अपना सम्यग्ज्ञान कार्य है। एक समय में साथ में उत्पन्न होता है,

फिर भी उनमें कारण-कार्य का एक समय में भी भेद कहने में आता है। समझ में आया ? आहा..हा... ! **'सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है।'** उसका अर्थ - अपना निजानंद प्रभु, उसकी अंतर में अनुभव में प्रतीत नहीं हुई तो उसे ज्ञान होता नहीं। प्रतीत आयी तो बाद में साथ में ज्ञान उत्पन्न हुआ उसे कार्य कहने में आता है। किसका कार्य ? सम्यग्दर्शन का कार्य। आत्मा का कार्य नहीं ? ऐ..ई.. ! क्या कहते हैं समझ में आया ?

आत्मा... है तो सम्यग्दर्शन एक कार्य और सम्यग्ज्ञान भी कार्य है। किसका (कार्य है) ? आत्मा का। आत्मा से देह, वाणी, मन, जड़ भिन्न, कर्म भिन्न, जुदा, पुण्य-पाप का भाव होता है, वह भी विकार भिन्न है। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानंद की प्रतीत (हुई), वह है तो आत्मा का कार्य, पर्याय है इसलिए। और साथ में सम्यग्ज्ञान हुआ निज का बोध हुआ कि, आत्मा अनंत गुणमय है, शुद्ध है, निर्मल है... समझ में आया ? यह ज्ञान, है तो आत्मा का वर्तमान कार्य लेकिन दो पर्याय के बीच में सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। सम्यग्दर्शन पर्याय है। समझ में आया ? यह सूक्ष्म नहीं आया ?

आत्मा... अरे.. ! आत्मा क्या चीज़ है ? उसकी खबर नहीं। अनंत काल में उसने उसको जाने बिना सब किया। कोटि जन्म तप किया, भक्ति की, पूजा की, दान-दया अनंत बार किये, उसमें कुछ आत्मा का लाभ हुआ नहीं। पुण्यबंध हो जाये, स्वर्गादि मिल जाये (और) चार गति में भटके।

मुमुक्षु :- पूजा करे और चार गति में भटके ?

उत्तर :- शुभभाव है न ? पुण्यबंध होता है। आत्मदर्शन, आत्मज्ञान बिना उसे मात्र पुण्यबंध होता है। मिथ्यादृष्टि तो साथ में है, सम्यग्दर्शन तो है ही नहीं। समझ में आया ? बात तो ऐसी है, भैया ! सूक्ष्म है। पहले आ गया न ? आगे थोडा आयेगा। कोटि जन्म तप तपे तो भी आत्म ाका लाभ होता नहीं सम्यग्दर्शन बिना आत्मा क्या चीज़ है, उसके अनुभव बिना, किसमें स्थिर होना ? उस चीज़ का पता लगे बिना चारत्रि आया कहाँ से ? समझ में आया ? बाहर की क्रिया तो शुभविकल्प है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव तो शुभराग है, पुण्य है, लेकिन आत्मदर्शन नहीं हैं तो पुण्य का फल क्या ? मिथ्यात्वसहित पुण्य का फल स्वर्ग आदि

मिलेंगे। जन्म-मरण का नाश तीनकाल तीनलोक में नहीं होगा - ऐसा कहते हैं। ये क्या कहते हैं ?'दौलतरामजी' कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- मंद मिथ्यात्व होता है न ?

उत्तर :- मंद मिथ्यात्व होता है, उसका अर्थ क्या ? अभाव नहीं होता। मंद-तीव्र तो कर्म है, अनादि की चीज़ है, अनादि की चाल है। दिगम्बर जैन साधु होकर नौंवे ग्रैवेयक अनंत बार गया, मिथ्यादृष्टि, हाँ ! मंद मिथ्यात्व था, अनंतानुबंधी कषाय भी मंद थी, नहीं तो उपर (के स्वर्ग में) जाये नहीं। (अनंतानुबंधी का) अभाव नहीं (हुआ था)। आत्मा के दर्शन बिना मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का अभाव नहीं होता। बहुत (सूक्ष्म) बात (है)। समझ में आया ?

वह कहते हैं, ज्ञान, अपने शुद्धस्वरूप की प्रतीत, भान, दर्शन हुआ तो वह आत्मा का ही कार्य है, लेकिन सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान होता है, उन दोनों के बीच सम्यग्दर्शन कारण (है) और सम्यग्ज्ञान कार्य (है)। समझ में आया ? अंतर की चीज बिना बाह्य से आत्मा में कुछ लाभ होता नहीं। यह कहते हैं - **'सम्यग्ज्ञान कार्य है। यह भी दोनों में अन्तर निर्बाध है।'** अंतर दो प्रकार का कहा। कौन-से दो प्रकार ? एक तो सम्यग्दर्शन लक्षण श्रद्धा है, सम्यग्ज्ञान का लक्षण जानना है - ये दो भेद हुए। और दूसरा सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है - ये दूसरा भेद हुआ। समझ में आया ? आहा..!**'अन्तर निर्बाध है।'** दोनों में अंतर निर्बाध है, दोनों में निश्चित ही अंतर है। समझ में आया ? निर्बाध है या नहीं ?

**'(जिसप्रकार) (युगपत्) एकसाथ होने पर भी,..'** दृष्टान्त देते हैं। वह 'अमृतचंद्राचार्यदेव' का दृष्टान्त है। ९०० वर्ष पहले दिगम्बर संत 'अमृतचंद्राचार्यदेव' हुए। इस और टीका है। उसमें है, श्लोक है, ३२-३३-३४ श्लोक है। नीचे संस्कृत है, वह 'अमृतचंद्राचार्यदेव' का है, 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय'। 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज के शास्त्र की जो टीका बनाई है (वे) 'अमृतचंद्राचार्यदेव' दिगम्बर संत वनवासी जंगलवासी थे, उनके 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में वह श्लोक है। पहले (सम्यक्) दर्शन का आराधन होने के बाद सम्यग्ज्ञान का आराधन करना। समझ में आया ? उसमें कारण-कार्य का दृष्टान्त है। देखो !

३४ (गाथा में) है।

**कारणकार्यवविधानं, समकालं जायमानयोरपि हि।**
**दीपप्रकाशयोरवि, समवकितज्ञानयो: सुघटम्।।३४।।**

३४ (गाथा में) है। '**प्रकाश दीपक की ज्योति से होता है उसी प्रकार...**' देखो ! दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। है साथ में। दीपक और प्रकाश है साथ में लेकिन दीपक कारण है, उजाला-प्रकाश कार्य है। एकसाथ में दोनों कारण-कार्य रहते हैं। समझ में आया ? पूर्व की पर्याय को कारण कहते हैं, पीछे की पर्याय को कार्य कहते हैं। ऐसा भी है और वर्तमान भी दर्शन कारण, सम्यग्ज्ञान कार्य - ऐसा युगपद् कारण-कार्य भी है। वीतराग की शैली समझनी चाहिए। समझ में आया ?

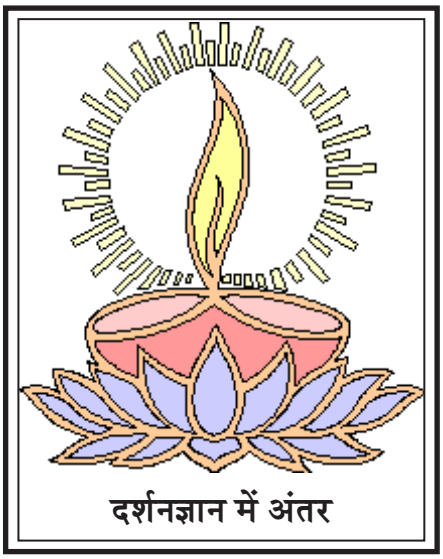
दर्शनज्ञान में अंतर

मुमुक्षु :- ... प्रकाश को कारण और दीपक को कार्य कहाँ...

उत्तर :- नहीं, नहीं, नहीं। प्रकाश कारण और दीपक कार्य, ऐसा नहीं। साथ में है फिर भी दीपक मुख्य वस्तु है। (दीपक) हो तो (प्रकाश) होता है। दीपक हो तो प्रकाश होता है। प्रकाश हो तो दीपक है, ऐसा नहीं। दीपक है तो प्रकाश है। आगे लेंगे। समझ में आया ? दीपक बिना प्रकाश कैसा ? प्रकाश है, दीपक नहीं ! साथ में है फिर भी दीपक है तो प्रकाश है, ऐसा है। कारणपना दीपक में है। समझ में आया ?

ऐसे विशिष्ट कारणपना सम्यग्दर्शन में है। विशिष्ट कारण-सम्यग्दर्शन अखंड पूर्णानंद प्रभु की अंतर में विकल्प रहित श्रद्धा होना वह दर्शन है तो ज्ञान कार्य कहने में आता है। आहा..हा... ! युगपद् साथ में होने परभी, कारण-कार्य साथ में भी होता है। समझ में आया ? एकान्ती अज्ञानी तो कारण-कार्य साथ में मानता नहीं, एकान्त मानता है (कि), साथ में नहीं, आगे-पीछे होता है। आगे-पीछे एकान्त मानना और साथ में नहीं मानना, एकान्त साथ में

मानना और आगे-पीछे नहीं मानना। पूर्व की पर्याय कारण और उत्तर पर्याय कार्य - ऐसा भी शास्त्र में (आता) है। समझ में आया ?

ज्ञान के तीन भेद-दोष है न ? कारणविपर्यास, भेदाभेदविपर्यास, स्वरूपविपर्यास। ये तीन दोष अज्ञान में है। अज्ञानी जानता तो है कि, आत्मा है, लेकिन उसके कारण में विपर्यास होता है कि, आत्मा का कर्ता कोई ईश्वर है या सर्वव्यापक कोई ब्रह्म है। समझ में आया ? ऐसा माननेवाला कारणविपर्यास में मिथ्यादृष्टि है, वह आत्मा को मानता नहीं। समझ में आया ? आत्मा को माने लेकिन आत्मा का कारण ऐसा माने कि, कोई ईश्वर (कारण है) या सर्वव्यापक ब्रह्म है - ऐसा माननेवाला कारणविपर्यास मिथ्यादृष्टि है। उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है। समझ में आया ?

भेदाभेद विपर्यास आता है। जगत में कोई ब्रह्म है, उसके साथ आत्मा अभेद है- ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आत्मा में सर्वथा गुण-गुणी भेद है - सर्वथा भेद है - ऐसा मानना भी मिथ्याज्ञान है। ज्ञान के बहुत भेद है, लेकिन जिसे समझने की जरूरत लगी हो, उसकी बात है कि नहीं ? समझ में आया ? अनादिकाल से मिथ्याज्ञान में भी भूल है। समझ में आया ?

'टोडरमलजी'ने 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहा है कि, मिथ्यादर्शन है तो मिथ्याज्ञान है। दर्शन के कारण ही मिथ्याज्ञान हुआ, उसमें ज्ञान में क्या दोष आया ? समझ में आया ? तो कहा कि, ज्ञान, अपना प्रयोजन सिद्ध करना है उसका तो ज्ञान करता नहीं और वह ज्ञान अप्रयोजनभूत बात का ज्ञान करता है। अपना प्रयोजन सिद्ध होता है ऐसा ज्ञान, आत्मा का (और) जड़ का भेदज्ञान तो करता नहीं और वह ज्ञान अप्रयोजनभूत सब बात (जानता है)। कथा-वार्ता, शास्त्र की बात का ज्ञान कर ले, अप्रयोजन को जाने और प्रयोजन को नहीं जाने, वही ज्ञान का दोष है। समझ में आया ? वास्तविक आत्मा और जड़ से भिन्न क्या चीज़ है ? उसको तो ज्ञान जाने नहीं और ज्ञान दूसरी बात बहुत जाने। वार्ता, कथा, शास्त्र, जगत के अनेक प्रकार (जाने)। वह तो अप्रयोजनभूत है, उसमें कोई आत्मा की सिद्धि है नहीं। समझ में आया ? वह कहते हैं, देखो ! सम्यग्ज्ञान भिन्न है। उसका विपर्यास-विपरीत कारण रहित,

भेदाभेद रहित, स्वरूप विपर्यास रहित जो ज्ञान होता है, उसे सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान कहने में आता है।

'**भावार्थ :- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यद्यपि...**' यद्यपि अर्थात् जो कि। '**एकसाथ प्रकट होते हैं...**' प्रकट तो एकसाथ होते हैं। भावार्थ है न ? भावार्थ। इस और है, ९४ पन्ना है। '**सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यद्यपि एकसाथ ही प्रकट होते हैं...**' अंतर आत्मभान होने के समय दर्शन-ज्ञान एकसाथ (प्रकट होते हैं) '**तथापि वे दोनों भिन्न भिन्न गुणों की पर्यायें हैं।**' गुण की पर्याय, ये सब कहाँ सीखना ?

आत्मा में दर्शनगुण-श्रद्धागुण त्रिकाल है और ज्ञानगुण त्रिकाल है। दो गुण हैं, ऐसे अनंत गुण हैं। अकेला आत्मा आत्मा करे, ऐसे नहीं चलता। अनंत गुण है, उसमें एक श्रद्धागुण है, एक ज्ञानगुण है। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की सच्ची पर्याय है और ज्ञानगुण की सम्यग्ज्ञान सत्य पर्याय है। दो गुण की दो पर्याय हैं, दोनों भिन्न हैं। पर्याय जाननी नहीं, गुण जानना नहीं और आत्मा का ज्ञान हो जाये, ऐसे नहीं होता - ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है। समझ में आया ? आत्मा है, उसमें श्रद्धागुण त्रिकाल है, श्रद्धागुण त्रिकाल है। उसमें पुण्य से धर्म होता है, पाप में मजा आता है, देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, सुख आत्मा में नहीं, पर में है - ऐसी विपरीत मान्यता है, वह त्रिकाल श्रद्धागुण की विपरीतपर्याय है, अशुद्धपर्याय है। कहो, समझ में आया ? और सम्यग्दर्शन की पर्याय जो सच्चीपर्याय है वह श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है। समझ में आया ? वह पर्याय है, गुण नहीं, गुण तो त्रिकाल है।

मुमुक्षु :- अशुद्ध सम्यग्दर्शन...

उत्तर :- अशुद्ध सम्यग्दर्शन का किसने कहा ?

श्रद्धागुण आत्मा में त्रिकाल है। आत्मा त्रिकाल है ऐसे गुण भी त्रिकाल है। उसकी मिथ्यापर्याय जो श्रद्धा होती है (अर्थात्) राग से मुझे धर्म होगा, परमार्थ धर्म-निश्चय आत्मा का धर्म (होगा); पर से मेरा कल्याण होगा, मेरे से पर का कल्याण होगा। ऐसी मान्यता। आत्मा में सुख नहीं लेकिन पर में सुख है, राग, धूल में - पैसे में सुख है, ऐसी अंतर मान्यता

जो है, यह मान्यता आत्मा के श्रद्धागुण की विपरीत पर्याय, अशुद्धपर्याय है, मलिनपर्या है, दु:खरूप अवस्था है। अब आगे शुद्धपर्याय कहते हैं।

'**सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय है...**' सम्यग्दर्शन क्या है ? आत्मा त्रिकाल है। श्रद्धागुण भी त्रिकाल है। उसकी वर्तमान क्षणिक एक समय की श्रद्धागुण की सम्यक्-सत्य शुद्धपर्याय है। वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन शुद्ध अवस्था है, शुद्ध अवस्था है, पवित्र अवदशा है, निर्मल अवदशा है, आनंद अवदशा के साथ पर्याय प्रकट होती है। आहा..हा... ! कहो, समझ में आया ? क्या कहा ? पहले जैसे नहीं कहा।

मुमुक्षु :- ऐसा करे तो ऐसे के ऐसे करे तो ऐसे उसमें मेल न हुआ।

उत्तर :- इसमें तो अभेद कहना है, इसलिये विस्तार नहीं आया। पहले तो भेद कहना था न ? (इसलिये विस्तार आया था)।

आत्मा वस्तु... वस्तु अनादि अनंत (है) उसमें श्रद्धागुण भी अनादि अनंत है। उसका अंतर में अनुभव करके, रागरहित होकर... राग है सही, संयोग है, कर्म है, निमित्त है, उसकी दृष्टि हटाकर अपने आत्मा में एकरूप अभेद श्रद्धा करना, अभेद आत्मा की अंतर निर्विकल्प श्रद्धा करना। वह श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय, प्रकट पर्याय को शुद्ध कहते हैं, वहाँ से मोक्ष का मार्ग शुरू होता है। कहो, समझ में आया ? श्रद्धा ऐसा मानती है कि, मैं परिपूर्ण हूँ, मेरे में आनंद है। ठीक ! सम्यग्दर्शन की पर्याय ऐसा मानती है। यह तो ज्ञान के साथ की बात है। मैं परिपूर्ण हूँ उसमें तो ज्ञान आ जाता है। मैं परिपूर्ण हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अबेद हूँ, एक हूँ - ऐसी श्रद्धागुण की पर्याय सारे आत्मा को भूतार्थ एक स्वभाव को मानती है। आहा..हा... ! कठिन बात है, भाई ! मूल बात ही (रही नहीं), एक अंक के बिना की सभी बातें, एक क्या है उसे भूल गये। जो अनंत काल में प्रकट नहीं किया और जो प्रकट करने से ही जन्म-मरण का नाश होता है, ऐसा सम्यग्दर्शन उसको कहते हैं।

क्या सम्यग्दर्शन की पर्याय परसन्मुख की प्रतीत करने से होती है ? सम्यग्दर्शन शुद्ध पर्याय है। किसकी ? आत्मा की। और श्रद्धागुण किसका है ? आत्मा का। आत्मा का श्रद्धागुण और आत्मा के सन्मुख की पर्याय बिना सम्यग्दर्शन की पर्याय कहाँ से होती है ? समझ में

आया ? क्या कहा ? श्रद्धा और आत्मा। आत्मा वस्तु और श्रद्धागुण। वह तो अपना निज स्वरूप है। अपना निज स्वरूप है, उसके सन्मुख दृष्टि हुए बिना उसकी श्रद्धा और उसके ज्ञान की शुद्धपर्याय कहाँ से होगी ?

जिसमें शुद्ध श्रद्धाशक्ति पडी है और शुद्ध द्रव्य है, उसकी अंतर प्रतीत किये बिना शुद्धपर्याय कहाँ से होगी ? क्या रागमें से आती है ? निमित्तमें से आती है ? परमें से आती है ? पर में श्रद्धागुण है ? आत्मा का श्रद्धागुण राग में है ? आत्मा का श्रद्धागुण निमित्त में है ? आत्म ाका श्रद्धागुण देव-गुरु-शास्त्र में है ? आत्मा का श्रद्धागुण क्या मंदिर में है ? आत्मा का श्रद्धागुण क्या 'सम्मेदशिखर' में है ? कहाँ है ? कहते हैं कि, भगवान आत्मा, जिसमें श्रद्धागुण त्रिकाल ध्रुव पडा है, उसकी और अंतर सन्मुख होकर, है उसमें से पर्याय प्रकट हो, उसका नाम श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय कहने में आती है। आहा..हा... !

अरे.. ! उसके निजघर की बात कभी सुनी नहीं। परघर की बात अनादि काल से (सुनी है।) यहाँ तो परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ वीतराग समवसरण में सो इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की दिव्यध्वनि आती थी। अरे.. ! आत्मा ! वही यहाँ संत कहते हैं, उसी परम्परा से 'दौलतरामजी'ने ढाल बनाई है। घर की कल्पना से नहीं बनाया। भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव, जिनको एक सैकेन्ड के असंख्य भाग में तीनकाल-तीनलोक जानने में आये, ऐसे परमेश्वर के मुख से दिव्यध्वनि निकली। दिव्यध्वनि। दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। ॐ आवाज निकली।

सो इन्द्रों की उपस्थिति में (निकली)। शक्रेन्द्र, ईशान इन्द्र आदि स्वर्ग के इन्द्र भी उपस्थित थे। गणधर-सन्तों के नायक गणधर की उपस्थिति में भगवान की वाणी में ऐसा आया। समझ में आया ? कि, तेरी सम्यग्दर्शन की पर्याय कहाँ से आती है ? किस खान में पड़ी है ? क्या राग-विकल्प उठते है उसमें गुण है कि उसमें से पर्याय आती है ? शरीर में श्रद्धागुण है कि उसमें से पर्याय आती है ? श्रद्धागुण का सम्यक् परिणमन (होना), उसका नाम शुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन है। आहा..हा... ! समझ में आया या नहीं ? आहा..हा... ! बडी सूक्ष्म बात है।

जिसमें पड़ा है, कोठी में अनाज पड़ा हो तो कोठीमें से निकले। खाली हो तो कहाँ से निकले ? कुएँ में... आपके यहाँ कहाँ से पानी आता है ? कुएँ में ? ठीक ! भगवान यहाँ तो कहते हैं, भाई ! जिसमें हो उसमें से निकले। प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से आता है। कुएँ में पानी हो तो अवेडा। अवेडा क्या कहते हैं ? अवेडा कहते हैं ? बाहर निकलाता है न ? बाहर थोडा होज होता है ना ? और पशु पीते हैं। पशु को पीने को कुएँमें से बाहर निकालते हैं न ? हमारे यहाँ अवेडा कहते हैं। अवेडा। कुएँ मे है उसमें से पानी निकालकर, कूंडु होती है कुंडी में ( भरते है )। कुएँ में है वह कुंडी में आता है या कुएँ में नहीं है और कुंडी में आता है ?

वैसे भगवान आत्मा अन्तर अनन्त गुण का बड़ा कुआ है। ऐसी अनंत गुण की थैली आत्मा है। गुण की थैली। आहा..हा... ! पैसे की थैली में अज्ञानी को गुदगुदी हो जाती है। हीरा, माणेक भरे हो तो आ..हा..हा... ! ( हो जाता है )। मूढ है, धूल में क्या है ? ऐ...ई... ! धूल में आत्मा कहाँ आया ? उससे आत्मा में क्या लाभ हुआ ? धूल धूल का काम करे, आत्मा भिन्न है।

यहाँ तो यह बताना है कि, आत्मा का सम्यग्दर्शनरूपी कार्य, वह कार्य जिसमें श्रद्धागुण पड़ा है और श्रद्धागुण का धरनेवाला आत्मा है, उससे वह कार्य होता है, दूसरे से होता नहीं। भाई ! क्या सुन रहे हो ? पहले न कहते थे। सुनते हैं और होता है, ऐसा आप कहते थे। ( गुरु से होता है ), ऐसा कहते थे। ( वह ) विपरीत था। समझ में आया ? क्या तुम्हारी श्रद्धापर्याय जो अवस्था है, वह गुरु में रहती है ? भगवान में रहती है ? तेरा गुण क्या भगवान में रहता है ? तेरा गुण तो तेरे आत्मा में अंदर है।

मुमुक्षु :- मदद करे... मदद।

उत्तर :- मदद कैसी ?

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण गुण से भरा, जो शक्ति है उसमें से श्रद्धा आती है। उसका अंतरलक्ष्य करने से पर्या प्रकट होती है। बस ! दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का कारण ही सारा द्रव्य है। भूतार्थ वस्तु कारण है, दूसरा कोई कारण है नहीं। ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय है। तब सम्यग्दर्शन को कारण कहने में आता है और बाद में साथ में

सम्यग्ज्ञान हो, उसे कार्य कहने में आता है। है तो एकसाथ-युगपत्। उसमें कारण-कार्य का भाव कहने में आता है। समझ में आया ? देखो !

**'सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है, और सम्यग्ज्ञान ज्ञानगुण की शुद्धपर्याय है।'** देखो ! तीसरी पंक्ति है। पंक्ति कहते हैं न ? लाईन, तीसरी लाईन है, देखो ! ९५ (पन्ना) है न ? ९५ पन्ना है। सम्यग्ज्ञान। आत्मा में ज्ञान, सारे चैतन्य में केवलज्ञान भरा है। केवलज्ञान अर्थात् केवलपर्याय नहीं। केवल-ज्ञान, एक ज्ञान, एक ज्ञान, एक ज्ञान त्रिकाल। द्रव्य त्रिकाल, ज्ञानगुण त्रिकाल। द्रव्य त्रिकाल, ज्ञानगुण त्रिकाल। उसके लक्ष्य से वर्तमान क्षणिक पर्याय उत्पन्न हो उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्ज्ञान ज्ञानगुण की पर्याय है। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की पर्याय है, एक समय में साथ में उत्पन्न होती हैं फिर भी श्रद्धागुण को कारण और ज्ञान को कार्य कहने में आता है। समझ में आया ? क्यों (भाई) ? वह तो वकील है, वकील। दिमागवाला है न ? एल.एल.बी. पास हुआ है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पैसा...

उत्तर :- पैसे का क्या काम है ? उसके पिताजी कहते हैं कि, भाई पैसा नहीं कमाता है। यहाँ आत्मा की पर्याय कमाने दो न, भैया ! बाहर कमा कौन सकते हैं ? पूर्व का पुण्य हो तो आता है, पुण्य नहीं हो तो लाख करोड (कुछ भी करो पैसा मिलता नहीं)। 'हुन्नर करो हजार, भाग्य बिन मेले नहीं कोढ़ी' एस पैसा भी मिले नहीं। समझ में आया ? कहो, बराबर होगा या नहीं ? भाई !

कहते हैं, **'पुनश्च सम्यग्दर्शन का लक्षण...'** देखो ! **'सम्यग्दर्शन का लक्षण विपरीत अभिप्रायरहित तत्त्वार्थश्रद्धा है...'** देखो ! दोनों के लक्षण भिन्न हैं। भगवान आत्मा की श्रद्धागुण की जो पर्याय सम्यक् पर्याय हुई, जो शांति, आनंद के साथ पर्याय हुई, जो मोक्ष की पहली सीढ़ी है, मोक्ष की पहली सीढ़ी है, उसका लक्षण क्या ? विपरीत अभिनिवेश-विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थश्रद्धान। उसमें सात तत्त्व की विपरीत श्रद्धा किंचित् रहती नहीं। सात तत्त्व, हाँ ! अज्ञानी अकेला आत्मा... आत्मा करे - ऐसा नहीं।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग, जिनके मुख में सात तत्त्व आये, सात में

जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। जीव और अजीव दो द्रव्य हैं और पाँच उसकी पर्याय हैं। पर्याय। सामान्य और विशेष। जीव और अजीव सात तत्त्व में दो पदार्थ हैं और पाँच उसकी विशेष... विशेष... दशा-अवस्था-हालत है। ऐसा सामान्य-विशेष मिलकर सात तत्त्व होते हैं। सामान्य-विशेष में विपरीत श्रद्धा बिना जो यथार्थ श्रद्धा है, उसे भगवान तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। समझ में आया ? सामान्य और विशेष दूसरे में कहाँ है ? भाई ! ये सामान्य-सामान्य कहते हैं। सामान्य के साथ विशेष पर्याय है। श्रद्धा करना वह विशेष है, सम्यग्ज्ञान विशेष है; द्रव्य नहीं, गुण नहीं। आहा..हा... !

सात तत्त्व में आस्रव में पुण्य-पाप समा जाते हैं, तो नव कहते हैं। सात में भी जीव और जड़ दो पदार्थ सामान्य वस्तु (हैं) और उसमें उसकी पाँच पर्याय हैं। आस्रव, बंध, आस्रव में पुण्य-पाप आया। वह जीव की विकारी पर्या है। जड़ में जड़ की (पर्याय है)। औरसंवर, निर्जरा, मोक्ष जीव की निर्मल पर्याय विशेष है, निर्मल पर्याय विशेष है। संवर, निर्जरा शुद्धपर्याय अपूर्ण है, मोक्षपर्याय शुद्धपर्याय पूर्ण है। ऐसे सात तत्त्व जैसे हैं, ऐसी विपरीत श्रद्धा रहित, विपरीत अभिप्राय रहित श्रद्धा करनी, उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन का लक्षण है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का लक्षण बताते हैं न ? सम्यग्ज्ञान कालक्षण दूसरा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

'**और सम्यग्ज्ञान का लक्षण...**' देखो ! '**संशय आदि दोष रहित...**' यह दूसरा लक्षण (है)। नीचे (फूटनोट में) है। 'संशय, विमोह, अनिर्धार।' है ? नीचे है, पहली पंक्ति है। संशय-सम्यग्ज्ञान में संशय नहीं होता। क्या (कहा) ? यह चांदी होगी या शीप ? शीप है या चांदी है ? मुझे पता नहीं। समझ में आया ? कुछ मालूम नहीं वह अनध्यवसाय है। यह तो चांदी को शीप मानना, शीप को चांदी ही मानना वह विपर्यास है। संशय (अर्थात्) कुछ होगा। होगा, अपने को कुछ मालूम नहीं। वह संशय है। ज्ञान में ऐसा संशय नहीं। विमोह नाम विभ्रम-विपर्यास नहीं और अनिर्धार अनध्यवसाय नहीं। वह तो अर्थ किया है, विमोह की व्याख्या की है। कोष्टक में शब्द हैं न ? विमोह अर्थात विभ्रम और विपर्यय।

देखो ! सम्यग्ज्ञान कैसा होना चाहिए ? जिसमें संशय नहीं (होता)। क्या है ? हमने

आत्मा जाना है या नहीं जाना इसकी हमें खबर नहीं। लो, मूढ है। समझ में आया ? हमारे आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ है या नहीं हमे मालूम नहीं पडता। (ऐसा) ज्ञान में संशय (होना)। यह संशय तो अज्ञान है। अज्ञान में सम्यग्ज्ञान होता नहीं। सम्यग्ज्ञान नहीं है, वहाँ सम्यग्दर्शन है ही नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ? संशय... संशय। दो कोटि का ज्ञान। शीप है या सोना ? शीप है या सोना ? शीप है या चांदी ? हमें क्या पता ? हमारे अनंत भव जन्म-मरण भगानने देखे होंगे तो हमे क्या पता ? मूढ है। तेरा ज्ञान ही अज्ञान है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान में संशय नहीं होता। मेरे अनंत भव होंगे ? समझ में आया ? तो सम्यग्ज्ञान है ही नहीं। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन के साथ होता है। सम्यग्ज्ञान में संशय होता नहीं। क्या होगा ? भगवान ने हमारे अनंत भव देखे होंगे... समझ में आया ? मूढ है। तेरा ज्ञान ही अज्ञान है, तेरी श्रद्धा ही मिथ्यात्व है। भगवान की श्रद्धा तुने की ही नहीं। ऐ..ई.. !

मुमुक्षु :- द्रव्यलिंगी मुनि..

उत्तर :- द्रव्यलिंगी मुनि को अन्दर तीनों होते हैं। संशय में थोडा स्पष्ट करते हैं न। समझ में आया ? ये ज्ञान के दोष हैं। जहाँ संशय है, वहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं तो जहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं है। वहाँ सम्यग्दर्शन भी नहीं है। सम्यग्दर्शन है, वहाँ सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान है, वहाँ संशय नहीं होता। समझ में आया ? यह तो समझ में आता है या नहीं ? भाई ! थोडा... थोडा। ठीक है। आज तो बहुत सूक्ष्म बात आयी है। 'कलकत्ता' में व्यापार में सब समझ में आता है, ये तो कभी-कभी सुनने मिलता है। आहा..हा... ! अरे.. ! भगवान ! तेरे घर की तेरी बात है, यह तो तेरे घर की बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि, ज्ञान का दोष भिन्न है। दर्शन का गुण भिन्न है, ज्ञान का गुण भिन्न है। दर्शन (तो) विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थ श्रद्धान, बस, इतना ! ज्ञान में संशय नहीं। संशय नहीं, संदेह नहीं। संदेह नहीं कि, मैने आत्मा का ज्ञान किया है या मुझे उसका ज्ञान नहीं है ? यह तो संशय है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। ऐसा जहाँ ज्ञान में संशय है, वहाँ सम्यग्दर्शन है ही नहीं। सम्यग्दर्शन का कार्य सम्यग्ज्ञान है, उस सम्यग्ज्ञान में संशय होता ही नहीं। क्या कहा ? भाई ! क्या कहा समझे ?

भगवान आत्मा वस्तु अखंडानंद प्रभु, उसकी प्रतीत-श्रद्धा सम्यक् हुई तो सम्यग्दर्शन में कारण आत्मा हुआ और कारण हुआ तो सम्यगदर्शन की पर्याय उसकी कार्य हुई। सम्यग्दर्शन में सारा आत्मा ही प्रतीत में-श्रद्धा में आया। ऐसी श्रद्धा के साथ जो ज्ञान हुआ उसमें संशय नहीं रहता। सारा द्रव्य भवरहित है, स्वभाव भवरहित, रागरहित है। राग और विकल्प से रहित मेरा सारा आत्मा है, ऐसे जब द्रव्य को कारण बनाकर सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्ज्ञान मे संशय नहीं। मेरे अनंत भव होंगे या नहीं ? अनंत क्या, भव ही मेरे में नहीं है। आहा..हा... ! समझ में आया ? भव तो विकार का फल है, भव तो विकार का फल है। विकार मेरे में नहीं - ऐसी दृष्टि होकर तो सम्यग्दर्शन हुआ है। भाई ! आहा..हा... ! ये थोडी सूक्ष्म बात आयी है।

मुमुक्षु :- बहुत अच्छी आई... गुजराती में फिर से सुनाईएगा।

उत्तर :- ना, हिन्दी में ठीक चल रहा है। सेठ आये हैं, सेठ थोडा सुने तो सही। मुश्किल से लाये हैं, (यह मुमुक्षु) लाये हैं। थोडी उदारता रखनी। पूरी जिंदगी में अभी आये हैं। यहाँ (एक मुमुक्षु) रहते हैं तो चलो, चलते हैं। इसलिये थोडा हिन्दी (लिया), गुजराती तो समझे नहीं। समझ में आया ? यह तो गुजराती जैसी ही भाषा है। आप जैसी हिन्दी बोलते हो, वैसी हमारी हिन्दी नहीं है। समझ में आया ? भाई ! ये लोग हिन्दी बोले ऐसी हिन्दी नहीं है। ये लोग जब बोलते हैं, तब लगे कि गडबड जैसी लगती है। यहाँ तो साधारण कामचलाउ हिन्दी होता है। कामचलाउ। समझ में आया ? क्या कहा ?

संशय। सम्यग्ज्ञान में क्या कहा ? देखो ! '**संशय आदि दोष रहित स्व-पर का यथार्थतया निर्णय...**' इसमें से अब निकालना है। क्या ? कि, स्व नाम आत्मा। ज्ञानानंदस्वरूप मैं हूँ - ऐसी प्रतीत हुई, उसके साथ ज्ञान हुआ और पर यहाँ तो स्व-पर है न ? दो है न ? ज्ञान है कि नहीं ? अपना ज्ञान हुआ तो उसके साथ राग, शरीर आदि अल्प है, बस इतना। अनंत भव है - ऐसा राग नहीं। अनंत भव है - ऐसा कर्म नहीं। ज्ञान में ऐसी पर की अस्तित्वता, राग की और कर्म की अस्तित्वता उसमें है, मेरे में नहीं। स्व का और पर का ऐसा निःसंशय ज्ञान (हुआ), उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। क्या आया ? थोड़ी सूक्ष्म (बात) आयी है तो थोडा अधिक (स्पष्टीकरण) करेंगे। क्या कहा ?

आत्मा अपना पूर्ण शुद्धस्वरूप श्रद्धा में सम्यक् में लिया तो उसके सम्यग्ज्ञान हुआ। श्रद्धा में तो अभेद है। अब ज्ञान में स्व-पर (है)। पहले आ गया था। उसमें ऐसा था न ? देखिये ! '**स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत**' दूसरी पंक्ति।

**सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान,**
**स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान।।१।।**

नीचे भी 'प्रमेयरत्नमाला' का दिया है न ? '**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं**' भाई ! '**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं**' ठीक है ? अब उसमें से निकालना है। क्या निकालना है ? देखो ! स्व और पर। अपना आत्मा अभेद शुद्ध अखंड ज्ञान, दर्शन में प्रतीत हुआ तो उसके साथ ज्ञान (भी हुआ)। उसमें (-श्रद्धा में) तो अभेद की प्रतीत हुई। अब ज्ञान हुआ। सम्यग्दर्शन कारण, ज्ञान कार्य। निश्चय से तो आत्मा कारण है, ज्ञान कार्य है। लेकिन पर्याय में सम्यग्दर्शन कारण और ज्ञान कार्य। ये सम्यग्ज्ञान कैसा है ? संशय बिना का। यह स्व-पर का ज्ञान है। कैसा ? कि, स्व-मैं अखंड शुद्ध हूँ, मेरी इतनी निर्मल पर्याय प्रकट हुई है और मलिन आदि पर्याय अल्प है, कर्म का संबंध भी अल्प रहा। कैसा ? कि, मेरे अनंत भव हैं - ऐसा भाव नहीं। अनंत भव है - ऐसा कर्म का निमित्त नहीं। समझ में आया ?

अनंत भव का अभावस्वभावरूप भगवान आत्मा, यह आत्मा। देखो ! यहाँ सात तत्त्व की श्रद्धा में निकालते हैं। सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्रतीति हुई, पर्याय में भान हुआ। साथ में ज्ञान ऐसा होता है - '**स्वापूर्वार्थव्यसायात्मकं।**' स्व-मैं शुद्ध हूँ, मेरी पर्याय भी संवर, निर्जरा आदि शुद्ध हुई है और रागादि थोडे हैं और कर्मादि हैं, उसका ज्ञान है। पर वह ज्ञान कैसा है ? कि, यह ज्ञान ऐसा मानता है कि, मुझे भव ही नहीं। स्वभाव में नहीं है तो मेरे भव नहीं है। अब रागादि अल्प रहे हैं, वह अनंत भव का कारण नहीं है। एकाद भव का कारण (है) लेकिन वह तो ज्ञान में पर का निश्चय आ गया। पर का निश्चय आ गया कि राग है, कर्म है, बस, इतना पर है, इतना। परंतु ये पर मेरे से पृथक् हैं। मुझे भव के अभाव भावरूप स्वभाव की प्रतीति हुई तो ज्ञान भी (ऐसा हुआ कि), मुझे भव है ही नहीं और अल्प रागादि है उसमें - राग में, पच्चीस-पचास भव कर दे, ऐसी राग की ताकत नहीं है। कर्म में निमित्त में भी पचीस-पचास भव कर

दे – ऐसी कर्म में-निमित्त में ताकत नहीं है। समझ में आया ? कठिन बात है, भाई ! ए..ई.. !

'**स्वापूर्वार्थ**' कहा न ? भाई ! वस्तु के ज्ञान में ऐसा आ गया। राग मेरा नहीं, कर्म मेरा नहीं, और (बाकी) रहा उसमें इतनी ताकत नहीं कि, मेरे में तीव्र विकार हो, उसमें निमित्त में ऐसी ताकात नहीं। समझ में आया ? अनंतानुबंधी का तीव्र राग है, उसमें निमित्त हो – ऐसा कर्म नहीं, यहाँ अनंतानुबंधी का विकार नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... ! कठिन बात है, भाई ! समझ में आया ? नयी (बात) आयी। भगवान... ! (बात तो) आते-आते आती है।

यहाँ ज्ञान का लक्षण संशयरहित। आत्मा का श्रद्धा का लक्षण विपरीत अभिप्रायरहित। विपरीत अभिप्रायरहित ऐसा भगवान आत्मा (है) – ऐसी श्रद्धा हुआ तो ज्ञान भी ऐसा हुआ। स्व का यथार्थ, पर का यथार्थ। यथार्थ अर्थात् राग है, इतना बंध का कारण है, लेकिन बंध का कारण कितना अल्प रहा है ? कि, अल्प एकाद भव आदि हो इतना बंध का कारण राग रहा है। कर्म भी इतने ही रहे हैं – ऐसी प्रतीत वर्तमान में है। भविष्य में कोई ऐसा आ जायेगा (तो) ? ऐसा है ही नहीं। मेरे इतने जोरदार कर्म आ जाये तो ? (ऐसा संशय होता है तो) मुझे सम्यक् ज्ञान ही नहीं है। ठीक है ? न्याय से है या नहीं ? लोजिक से है या नहीं ? आहा...हा... !

देखो ! क्या कहते हैं ? मात्र लक्षण का फर्क है, लेकिन स्व-पर का ज्ञान है। उसमें स्व की अंतर प्रतीति है। इसमें स्व-पर का ज्ञान (है)। ज्ञान में ऐसा नहीं आता है कि, इतना राग मेरा है कि जिसमें अनंत भव करने की ताकत है। ऐसा राग उसके पास है ही नहीं। और निमित्त में कर्म के – अजीव के संयोग में कर्म की ऐसी ताकात नहीं है – ऐसा मानते हैं कि, मेरे में तो यह है ही नहीं। मेरी चीज़ में तो नहीं है, किन्तु उसमें है – निमित्त होकर यहाँ अशुद्ध उपादान में तीव्र हो, ऐसी बात उसमें है नहीं, मेरे में है नहीं। समझ में आया ? यह बात नई निकली। देखो ! निकल जाये तो हिन्दी में निकल जाये। नहीं निकले तो गुजराती में भी नहीं निकले। कहो !

'**सम्यग्ज्ञान का लक्षण संशय...**' विमोह-विपरीत नहीं। देखो ! संशय नहीं, विपरीत नहीं। विपरीत-ऊलटा ज्ञान नहीं। जैसा है, वैसा ही उसका ज्ञान है। जैसा है वैसा ही है। विपरीत ज्ञान नहीं। विपरीत का अर्थ किया – विभ्रम और विपर्यय। समझे और तीसरा अनिर्धार है न

अनध्यवसाय। उसका अर्थ अनिर्धार। मुझे मालूम नहीं है, भैया ! मुझे अनंत भव होंगे या नहीं होंगे, मुझे मालूम नहीं पडता। ऐसा ज्ञान सम्यग्ज्ञानी का होता नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ज्ञान में इतनी ताकत है। अपना स्वरूप भव-विकाररहित का भान, श्रद्धा हुई, ज्ञान भी ऐसा हुआ कि, स्व तो विकाररहित, भवरहित, भव के भावरहित वस्तु है और थोडा राग रहा वह भी इतना रहा, भव के अभाव का श्रद्धा और ज्ञान हुआ तो राग इतना रह गया है कि, उसमें अनंत भव हो या अनंत जन्म-मरण हो - ऐसा राग या कर्म उसमें है नहीं। ऐसा स्वसहित पर की श्रद्धा, पर का ज्ञान सम्यग्ज्ञानी को संशयरहित, विपर्ययरहित, अनिर्धाररहित (होता है)। अनिर्धार रहित (अर्थात्) निर्धारित होता है। समझ में आया ? अरे.. ! भाई ! आत्मा की श्रद्धा और आत्मा का ज्ञान किसे कहते हैं ? ये लालापेठा है ? लोक में भी जो समझते हैं उसमें उसे संशय होता है ? बराबर है, हमारा ज्ञान बराबर है, हम बराबर जानते हैं (ऐसा कहते हैं)। जिसे व्यापार होता है, जिसकी वकालत हो, डोक्टर हो, बाहर का व्यापार हो, ये मकान का धंधा हो (उसमें) शंका होती है ? २२ मजले का मकान करते थे। (उनकी दुकान में पगला करने गये थे (तब कहते थे), ये हमारा २२ मजले का मकान का धंधा है, उसका नकशा है। नकशा दखिाते हैं, हमारे पास माल नहीं, नकशा बताते हैं। समझ में आता है ? उसे शंका होती है ? हम जो धंधा करते हैं उसमें बराबर फायदा करेंगे। (ऐसा) माने। फिर भी पुण्य हो तो आये, पुण्य नहीं हो तो न आये।

यहाँ तो भगवान आत्मा... देखो ! यहाँ सम्यग्ज्ञान-आत्मा का ज्ञान, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान में तीन दोष है नहीं। **'स्व-पर का यथार्थतया निर्णय है - इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।'** इसलिए श्रद्धा का आराधन करके, सम्यग्ज्ञान का आराधन करना। यह इसका तात्पर्य है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)